सम्पादकीय

प्रिय दोस्तों,

साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा के स्वस्थ विमर्श के लिए प्रतिबद्ध त्रैमासिक ई-पत्रिका 'परिवर्तन' (संयुक्तांक-12-13, अक्तूबर-2018-मार्च 2019) को आप विशाल पाठक समुदाय के हाथों में सौंपते हुए जहाँ एक तरफ अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ अत्यधिक तकलीफ़ का भी।

पूरा देश उस समय सन्न रह गया जब सर्वाधिक सावधानी और सुरक्षा के बंदोबस्त में रहने वाले देश के राष्ट्रीय राजमार्ग पर पुलवामा आतंकी हमले की सूचना मिली और पता चला कि इसमें चालीस से ज्यादा जवानों ने अपने प्राण गँवा दिये हैं। देश के इन वीर सपूतों को हमारी श्रद्धांजलि!

विगत कुछ महीनों में हिन्दी साहित्य की दुनिया के कई बड़े हस्ताक्षर इस संसार को अलविदा कह गए। हमारे समय की बड़ी महत्वपूर्ण कथा लेखिका कृष्णा सोबती, आलोचक डॉ. नामवर सिंह, लेखिका अर्चना वर्मा, प्रसिद्ध पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' की संपादिका, कवयित्री तथा सामाजिक कार्यकर्ता रमणिका गुप्ता जैसे नामचीन व्यक्तित्व के जाने से हिन्दी साहित्य की दुनिया में एक बहुत बड़ी रिक्ति पैदा हो गई है जिसे भर पाना असंभव है। दुःख की इस घड़ी में 'परिवर्तन पत्रिका' शोकसंतप्त परिवार के साथ है।

कृष्णा सोबती जी की मातृ भाषा भीष्म साहनी, अज्ञेय तथा कुमार विकल की मातृभाषा की तरह ही पंजाबी थी। अतः इनका योगदान न सिर्फ हिन्दी-क्षेत्र का साहित्यिक विस्तार करने में है, बल्कि स्वाभाविक पंजाबी का देशी पुट लिए इनकी रचनाएँ हिन्दी पाठकों को नई ताजगी का एहसास कराती है। कृष्णा सोबती जी की रचनाओं को पढ़ने के बाद कई बार पाठक 'अपराध-बोध' से भर जाता है और इस विसंगति से भरे समाज को स्थिर रखने में खुद को भी दोषी मानने लगता है। दरअसल यही वो नाजुक पल है जिसे साहित्य की साहित्यिकता से उसकी समाजिकता की ओर का प्रस्थान-बिन्दु कहा जा सकता है। सोबती जी की अधिकतर रचनाओं की बुनावट इसी तनाव पर टिकी हुई है और यही कारण है कि ये रचनाएँ बहुत ही बारीकी के साथ मानवीय पक्षों को सामने लाती हैं।

हिन्दी आलोचना को समृद्ध करने में डॉ. नामवर सिंह का अप्रतिम योगदान है। देखा जाय तो नामवर सिंह ने अपनी आलोचना की पुस्तकों के द्वारा छायावाद तथा उसके बाद के हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के बदलते मूल्यों को आँकने-परखने तथा विवेचित-विश्लेषित करने की एक कसौटी दी और बताया कि आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन के लिए अगर आलोचना की पुरानी परिपाटी का प्रयोग किया जाये तो छायावाद जैसा बहुमूल्य काव्यान्दोलन भी रहस्यवादी और अप्रगतिशील नजर आयेगा।

अर्चना वर्मा और रमणिका गुप्ता ने अपने–अपने रचनाकर्म द्वारा आजाद भारत में 'स्त्री-मुक्ति-आंदोलन के सैद्धांतिक पक्षों को काफी मजबूत किया है। देखा जाय तो सामाजिक परिवर्तन की मुकम्मल लड़ाई के दूरगामी परिणाम तभी लाये जा सकते हैं जब यह एक साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सभी मोर्चे पर लड़ी जाए। इन दोनों लेखिकाओं का जुड़ाव पत्रकारिता से रहा है। अर्चना वर्मा जी 'हंस', 'कथादेश' और 'दिनमान' जैसी पत्रिकाओं से जुड़ी रहीं, वहीं रमणिका जी ने 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका के माध्यम से शोषितों-

वंचितों की आवाज को जीवनपर्यंत मुखर करने का काम किया। यह पत्रिका पिछले तीन दशकों से लगातार आम जनता के सवालों को उठाती रही है। यह पत्रिका इस मायने में भी काफी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से कई नवोदित लेखकों को राष्ट्रीय पहचान मिली है।

पिछले 27, 28, एवं 29 दिसंबर-2018 को त्रिशूर, केरल में दक्षिण भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस आयोजन ने हिन्दी की साहित्यिक दुनिया का ध्यान आकृष्ट किया है। इस आयोजन का उद्देश्य दक्षिण भारत में चल रही साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करना, उसका प्रचार-प्रसार करना, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सेतु के रूप में अनुवाद को प्रोत्साहित करना, राष्ट्रीय स्तर पर संगोष्ठी एवं कार्यशाला आयोजित करना आदि था। इस सम्मेलन में काफी संख्या में हिन्दी प्रेमियों की उपस्थिति देखी गई। इस तरह का सम्मेलन दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए महात्मा गाँधी द्वारा देखे गए सपने को मजबूत करता है। अगला सम्मेलन दिसंबर- 2019 में पॉण्डिचेरी में आयोजित होगा।

पिछले कुछ समय से प्रशासनिक और शैक्षणिक सेवाओं में प्रतिनिधित्व के सवाल को काफी मजबूती के साथ उठाया जा रहा है। यह सच्चाई है कि इन सेवाओं में दलित-पिछड़े समुदाय की भागीदारी बहुत ही कम है। हालाँकि नब्बे के दशक में सरकार ने मण्डल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू कर अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) को सरकारी नौकरी में 27 फीसदी का आरक्षण तो दिया, लेकिन लगभग ढाई दशक बाद भी प्रतिनिधित्व में कमी बनी हुई है। मेरे अनुसार इसके कुछ बुनियादी कारण हैं जिसे गंभीरता पूर्वक तलाशने की जरूरत है।

बदलते समय के साथ अंगड़ाई लेते नए भारत में 'नयेपन' की पहचान की एकमात्र तो नहीं, लेकिन एक महत्वपूर्ण कसौटी यह जरूर मानी जाएगी कि यहाँ की सामाजिक व्यवस्था ने अपने पितृसत्तात्मक-ब्राह्मणवादी-सामंती केंचुलों को किस हद तक त्यागा है। अगर कार्ल मार्क्स के सामाजिक सिद्धान्त की एक मोटी सी बात कि "आर्थिक परिवर्तन ही मुख्य रूप से सामाजिक परिवर्तन की दिशा तय करता है।" को ही समझें, तो भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश की सामाजिक तरक्की की दिशा तभी तय होगी जब यहाँ की बहुसंख्यक दलित-पिछड़ी जातियों के सामाजिक ढाँचे को आर्थिक प्रगति से जोड़ा जाएगा।

पिछली सदी के औद्योगीकरण तथा भूमंडलीकरण ने अचानक से अन्य पिछड़ी जातियों (मूल रूप से यही जातियाँ सदियों से श्रमिक के रूप में काम करती रहीं हैं।) के परंपरागत रोजगार पर कड़ा प्रहार कर उन्हें बेरोजगार कर दिया जिसके लिए वे उस वक्त तक तैयार नहीं थे। शिक्षा से वंचित धोबी-मोची-पासी-कुम्हार-जुलाहा सहित सैकड़ों जातियों की पुरानी पीढ़ी जहाँ बेरोजगार हुई, वहीं युवा पीढ़ी परंपरागत-पारिवारिक आर्थिक आय के स्रोतों की स्थिति चरमराने से अशिक्षित या अल्प शिक्षित रहते हुए शहरों की ओर पलायन कर शहरों में असंगठित मजदूर के तौर पर काम करने लगी। यही कारण है कि आज की तारीख़ में आरक्षण लागू होने के दशकों बाद भी जब प्रशासनिक और शिक्षण संस्थानों में इन जातियों का प्रतिनिधित्व ढूँढ़ा जाता है तो उनकी संख्या काफी कम मिलती है।

आज भी गरीबी की मार झेल रही दलित-पिछड़ी जातियों की नई पीढ़ी की शिक्षा, प्राथमिक से मीडिल तक पहुँचते-पहुँचते दम तोड़ देती है। मजबूरन वो शहर की तरफ पलायन कर जाते हैं। इन्हें पलायन से रोकने में व्यवस्था अगर आज भी असमर्थ रही तो प्रतिनिधित्व का संकट आगे भी रहने वाला है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री फ्रीडरिक शिलर के संदर्भों के द्वारा फिलहाल, व्यक्तिगत तौर पर मैं भारत को एक पिछड़ी सभ्यता वाला देश स्वीकार करने की मनःस्थिति में हूँ। कारण यह कि "सभ्यता का पहला कानून यह है कि दूसरों की स्वतन्त्रता को कायम रखा जाय।" भारत की जकड़ी हुई जातीय संरचना को देखने से यह महसूसा जा सकता है कि दलितों और पिछड़ों की स्थिति में अभी भी व्यापक बुनियादी परिवर्तन की जरूरत है। पिछले कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मुसलमान और अछूत जातियों के लोग पूरे भारत में गरीबी, कलंक तथा उच्च कही जाने वाली जतियों के डर के साये में अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। हालाँकि अंबेडकर द्वारा निर्देशित भारतीय संविधान ने इनसे इन्हें मुक्ति दे दी, लेकिन व्यवहार में यह अभी भी ठीक से काम नहीं कर रहा है।

यह अंक...

'परिवर्तन' की शोधालेख चयन टीम को देश भर से कई दर्जन कविताएँ, अनूदित रचनाएँ, शोध-आलेख आदि प्राप्त हुए। यह पत्रिका की प्रसिद्धि का राष्ट्रीय विस्तार दिखाता है। हमारी पूरी कोशिश रही है कि उत्कृष्ट सृजन को अंक में जगह मिले। कुछ शोधालेखों में थोड़ी-बहुत तथ्यगत गलतियाँ थीं जिसे लेखकों द्वारा सुधार दिया गया है। संपादक की यह पूरी कोशिश रही है कि पत्रिका को भाषागत दोषों से मुक्त रखा जाय, लेकिन संभव है कि गलतियाँ रह गयी हो।

'परिवर्तन' के इस अंक में रामाश्रय पटेल ने 'प्रगतिशील कविता' में स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को रेखांकित करते हुए निराला, रघुवीर सहाय, धूमिल आदि कवियों की सामाजिक चिंता के कई पक्षों को सामने लाया है। अमित कुमार रजक ने कबीर की कविता के उन तत्वों की पहचान की है जहाँ कबीर आज भी प्रासंगिक हैं। राना कुंजर सिंह ठाकुर ने संजीव की कहानी 'हत्यारे' के माध्यम से कथाकार संजीव के रचना-संसार की सामाजिकता को सामने लाने का प्रयास किया है। डॉ. सुरजीत सिंह ने मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' का पुनर्पाठ किया है। प्रेम कुमार ने अपने आलेख में चंद्रकांता की कहानियों में कामकाजी स्त्रियों के जीवन संघर्षों की तलाश की है। बर्नाली नाथ ने राजेश जोशी की कविता 'विकल्प' के माध्यम से बताया है कि भूमंडलीकरण ने छोटे किसानों और मजदूरों के सामने आज, सिर्फ और सिर्फ आत्महत्या का ही विकल्प सामने रखा है। ज्ञानचन्द्र पाल ने अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में भक्ति आंदोलन की पड़ताल की है। मनीषा देवी ने संजीव के उपन्यास 'रह गईं दिशाएँ इसी पार' के माध्यम से मछुआरा समाज के जीवन-संघर्षों को सामने लाया है। इसके साथ ही कई और महत्वपूर्ण आलेख भी इस अंक में शामिल हैं, जो साहित्य तथा समाज को समझने के लिए निःसन्देह नए अध्याय के रूप में परिगणित किए जाएँगे।

यह अंक अपने साथ कई युवा रचनाकारों की कविताओं को भी लेकर आया है जिनमें लव कुमार, कंचना सिंह, सागर कुमार 'दरख्त', अजय चंद्रवंशी, निर्भय सिंह, संजय सिंह बैस, डॉ. किरण बाला और रौशन कुमार की कविताएँ शामिल हैं। इनकी कविताएँ संवेदनाओं के कई रंग हमारे सामने उपस्थित करते हैं। इनमें वर्तमान समय की आलोचना के साथ-साथ भविष्य के प्रति आशा और उम्मीद की नई किरण भी हैं । यह अंक कई दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इसमें हिन्दी साहित्य की कई विधाओं जैसे - कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, व्यंग्य आदि पर भी आलेख शामिल है तथा विविध-विमर्श, राजभाषा, सामाजिक आंदोलन और अनुवाद पर भी। इस अंक में सुशांत सुप्रिय द्वारा जापानी कहानी का हिन्दी अनुवाद भी शामिल है जो इसकी परिधि को अंतरराष्ट्रीय विस्तार देता है।

इस अंक के लिए भारत के विभिन्न शहरों यथा-सागर, हुगली, भटिंडा, वर्धा, मुंबई, कोट्टयम, दिल्ली, रायपुर, कोच्चि, वाराणसी, बेंगलुरु, उदयपुर, खड़गपुर, हैदराबाद, अमरकंटक, जयपुर, गढ़वाल, गया, पटना आदि से पाठकों-लेखकों ने न सिर्फ आलेख भेजा, बल्कि आलेख सुधार में 'परिवर्तन' का पूरा साथ दिया । यह 'परिवर्तन' पत्रिका की बढ़ती प्रसिद्धि और राष्ट्रीय विस्तार का द्योतक है।

महत उद्देश्यों को लेकर चलने वाली इस महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका में मेरा योगदान कुछ भी नहीं है, लेकिन मुझे खुशी है कि मैं इस संयुक्तांक का हिस्सा बना। 'परिवर्तन' के स्थायी संपादक महेश सिंह जी को धन्यवाद कि उन्होंने मुझे इस योग्य समझा कि मैं इस अंक का अतिथि संपादक का दायित्व संभालूँ। मेरी शुभकामनाएँ 'परिवर्तन' के साथ है। मुझे उम्मीद ही नहीं पूरा विश्वास है कि आप पाठकों का प्यार 'परिवर्तन' को पूर्ववत मिलता रहेगा।

शुभकामनाओं के साथ...!

सितारे हिन्द